पोंगल पोली

मृदुला गर्ग

आइहोले के खँडहर मन्दिरों के बीच बने ताल से सोनम्मा पानी भर रही थी कि उसने देखा, वही कल वाले लोग आज फिर आए हैं। वही लम्बी काली गाड़ी। देखते ही उसका छोटा भाई फकीरप्पा अपने साथी बेरू और शान्तम्मा के साथ गाड़ी को घेरकर खड़ा हो गया। आज फकीरप्पा और बेरू, दोनों में से कोई स्कूल नहीं गया था, शायद इन्हीं लोगों के आने की आस में।

सोनम्मा साँस रोककर स्त्री के बाहर निकलने की प्रतीक्षा करने लगी। लकदक सफेद पोशाक पहने एक आदमी कूदकर गाड़ी से उतरा और फुर्ती-से पीछे का द्वार खोल खड़ा हो गया। वह उतर आई। वही गले में सोने का भारी हार, हाथों में सोने की ढेर सारी चूड़ियाँ, टोकरी भर काले केश सिर पर और... उसकी साड़ी। इतनी महीन जैसे हवा में उड़ता वर्षा ऋतु का पहला बादल। साथ ही पुरुष भी उतर आया, हाथ में वही कल वाला डिब्बा लिए। क्या अजीब कपड़े पहनता है। रंग-बिरंगी कमीज़ और कसी-कसी, वह क्या कहते हैं, पतलून। हँसी आती है।

वे दोनों हँस-हँसकर आपस में बातें कर रहे थे और सोनम्मा थी कि उधर से आँखें नहीं हटा रही थी।

कल आए थे तो सब मन्दिरों में घूमे थे पर जैसे और यात्री घूमते हैं, वैसे नहीं। ये तो हर मूर्ति के आगे

साँस रोककर खड़े हो जाते थे और आदमी डिब्बा आँखों से लगा लेता था। उसका मन हो आया था, वह भी एक बार उसमें से देखे। उसमें सनीमा दिखता है क्या? एक बार मेले में देखा था, कैसे बोलता था दिखलाने वाला – आगरे का ताजमहल देखो। बारह मन की धोबिन देखो। आइयो! कितना मज़ा आया था।

पर फकीरप्पा कहता है – "यह सनीमा नहीं है, कैमरा है, कैमरा। बटन दबाते ही फोटू खिंच जाता है। फकीरप्पा स्कूल में क्या पढ़ता है, अपने को बश्वेश्वर का अवतार समझने लगा है। संसार में जैसे कुछ हई नहीं जो ये न जानता हो।

कल सारी सुबह सोनम्मा उनके पीछे फिरती रही थी और जब सूरज चढ़ने पर उन्होंने दुर्गा मन्दिर के अहाते में बैठकर टोकरी खोली तो, शिव रे, उसके मुँह में इत्ता पानी आया, इत्ता पानी आया कि थूकना कठिन हो गया, क्या-क्या सामान था उसमें! दही भात, इमली भात, पोंगल, पूरी, आलू भाजी और सफेद-सफेद वह जो होती है। उसने बाज़ार में देखी कई बार है पर खाई कभी नहीं। क्या नाम है उसका; बरेड; हाँ, बरेड। और भी जाने क्या-क्या। अच्छा; एक ही दिन, एक ही वेला, कोई इतना खा सकता है। अगर उसे मिले तो? हाँ, वह खा सकती है, अवश्य खा सकती है। पर मिलेगा कैसे?

खाते-खाते स्त्री ने उसे ताकते देख लिया था और सोनम्मा लजाकर भाग खड़ी हुई थी, सीधी ताल पर। अकेली क्या वही देख रही थी? उन दोनों के पीछे बच्चों का पूरा जमघट सारा दिन पिछलग्गुओं की तरह घूमता रहा था। वह सिर्फ बढ़िया-बढ़िया चीज़ें खा नहीं रही थी, अपने सामान में से बहुत कुछ बच्चों में बाँटे दे रही थी। कोई खाली हाथ नहीं रहा था, किसी के हाथ में बरेड, किसी के हाथ में केला, नहीं तो पूरी या पोंगल या कुछ और। तभी सब उसे अम्माँ-अम्माँ पुकार रहे थे।

आज फिर वही हो रहा है। उसे देखते ही बच्चे उसे घेरकर खड़े हो गए हैं। तभी शान्तम्मा भागती हुई सोनम्मा के पास आई और बोली, "जानती है रे, बेरू को उसने एक फौण्टेन पेन ला दिया है। बेरू भी बड़ा चण्ट है। स्कूल में पढ़ता है न। ज़रा लाज नहीं है उसे। झट माँग लिया

और आज उसने ला भी दिया।"

सोनम्मा ने उत्साह नहीं दिखलाया तो भी शान्तम्मा का जोश कम नहीं हुआ। वैसे ही कहती गई, "सच रे, जो माँगो वही दे देती है। मैंने पूछा, तुम्हारे गले में क्या असली सोना है, तो बिलकुल पास लाकर दिखला दिया। कैसे चमकता है रे! और वह है भी कितनी सुन्दर!"

सोनम्मा फिर भी कुछ नहीं बोली!

शान्तम्मा की समझ में नहीं आ रहा था, आज यह इतनी उदासीन क्यों है। उसे झकझोरकर उसने सीधा वार किया, "तू भी माँग ले न बरेड जाकर। रोज़ कहती है, बरेड को मन ललचाता है।"

"मुझे नहीं चाहिए बरेड-फरेड," सोनम्मा सहसा झिड़ककर बोली, "तू जा यहाँ से।"

शान्तम्मा उसे अँगूठा दिखलाकर भाग गई और सोनम्मा का मन और भारी हो आया।

***

कल तीसरे पहर वे दोनों ताल पर आए थे। तभी से सोनम्मा का मन कैसा-कैसा तो हो गया है।

वह ताल से पानी निकाल चुकी थी कि स्त्री ने पास आकर पूछा था, "तुम लोग क्या यही पानी पीते हो?"

"हाँ, अम्माँ!" सोनम्मा ने उल्लासित स्वर में कहा, "चाहिए तुम्हें? दूँ?"

"नहीं, नहीं!" कहकर वह एकदम पीछे हट गई थी।

कुछ कहा नहीं था पर उसके शरीर से जैसे घृणा बह निकली थी।

कुछ देर वह ताल के किनारे खड़ी इधर-उधर देखती रही थी, फिर हाथ बढ़ाकर किनारे बनी एक मूर्ति को दिखलाकर चिल्ला उठी थी, "अरे देखो न, धनकुबेर की मूर्ति, लगता है यह ताल भी आइहोले के मन्दिरों के साथ ही बना होगा, पाँचवीं-छठी शताब्दी में।"

"यानी," पुरुष ने हँसकर कहा था, "डेढ़ हज़ार साल से यहाँ के लोग इसी ताल का पानी पीते आए हैं। ज़रा कीच तो देखो। छीः छीः!"

सोनम्मा की समझ में नहीं आया

था, इसमें छीः छीः की क्या बात है। पुराने मन्दिरों के खँडहरों के बीच बस्ती बसाकर जो लोग रह रहे हैं, वे सभी तो इस ताल से पानी लेते हैं। आजी कहती है, वो जब छोटी थी तो यहीं से पानी भरती थी। उसी ने बतलाया था, "यह मोटे पेट वाली मूर्ति धनकुबेर की है। वो धन की रक्षा करते हैं।" "धन क्या होता है," उसने पूछा था। "यही सोना-चाँदी," आजी ने कहा था। "पर यहाँ तो सोना-चाँदी है नहीं," उसने कहा था तो आजी बोली थी, "अरे, नीर कौन धन से कम है।" हाँ रे, ठीक तो है, यहाँ बैठे धनकुबेर ताल के नीर की रक्षा कर रहे हैं। जो हो, उसे पसन्द बहुत हैं धनकुबेर। गोल-गोल मुख, गोल-मटोल पेट और, आइयो रामा, क्या हँसी! देखकर पेट फूल जाए। कितनी बार पानी भरते वह उनके सामने खड़ी होकर हँसती रहती है। हँसते वो भी हैं, अवश्य हँसते हैं पर गुपचुप। देवता जो ठहरे।

***

कल की बात याद करके सहसा उसे एक भयावह विचार आया, उस स्त्री ने इतना ढेर सोना पहन रखा है। कहीं धनकुबेर नीर-ताल छोड़ उसकी रक्षा न करने लगें। उसने घबराकर मूर्ति की तरफ देखा। ना, वे तो वैसे के वैसे हँस रहे हैं। वे कहीं नहीं जाएँगे। फिर भी उसका मन पूरी तरह सन्तुष्ट नहीं हुआ। बेचैनी बनी रही। तभी फकीरप्पा तेज़ी-से दौड़ता आया और अंजुली में भरकर गटागट पानी पीने लगा। दूसरे हाथ में बरेड पकड़े था।

"लेगी?" गला तर करके उसने बरेड वाला हाथ नचाकर पूछा।

"तू ही खा, मुझे नहीं चाहिए," सोनम्मा ने कहा।

"क्यों? सब तो लेते हैं। तू क्यों नहीं माँगती?"

"चल यहाँ से, बदमाश! नीर भरने दे।" वह झिड़ककर बोली।

नीर शब्द कहते ही ताल के आसपास छीः-छीः का भद्दा शोर उठा।

"बदमाश होगी तू!" कह फकीरप्पा चल दिया पर थोड़ी दूर जाकर लौट आया। पास आकर बोला, "उसके पास कैमरा है कैमरा, बटन दबाते ही खट-से फोटू खिंच जाता है। कहूँ उससे, तेरे पोंगल-पोली का खींच दे?"

"जाता है या कपाल फोड़ूँ?" सोनम्मा ज़ोर-से चीखी और झुककर ज़मीन से ढेला उठा लिया।

फकीरप्पा जीभ दिखाकर भाग गया और वह खीज से भरी खड़ी रही। जाने इस मरे फकीरप्पा से क्यों पोंगल, पोली के बारे में कह डाला था। जब देखो, चिढ़ाता रहता है।

तभी उसने देखा, स्त्री-पुरुष उसके सामने से गुज़र रहे हैं।

"नहीं चाहिए मुझे बरेड-फरेड।" मन-ही-मन उसने कहा और जीभ निकालकर उन्हें दिखला दी।

पर उनका ध्यान उसकी तरफ था ही नहीं।

वे ताल के दूसरी तरफ बिखरे मन्दिरों के खँडहर देख रहे थे।

सहसा, "देखो तो, देखो तो!" कहकर वह आदमी लगभग चीख उठा, "वह घर तो देखो। यक्ष-यक्षिणी के कन्धों पर।"

सोनम्मा धक् से रह गई। वह तो उसका घर है। वही तो उसके पोंगल-पोली हैं।

स्त्री ठिठककर खड़ी हो गई।

"कितने सुन्दर हैं!" उसने गद्‌गद स्वर में कहा और उधर देखती रही। क्षण भर बाद हँस दी। चहकती हुई बोली, "चालुक्यों के यक्ष-यक्षिणी मेरे द्वारपाल बन सकें तो सच, मैं और कुछ न मागूँ।"

"सच?" पुरुष ने भी हँसकर कहा।

"सच, मज़ाक नहीं," स्त्री गम्भीर हो गई, "ये मुझे मिल जाएँ तो मैं एकदम सादा-सा घर बनाकर रह सकती हूँ।" उसने आग्रह के साथ कहा।

पुरुष ने उसकी तरफ देखा और सोचकर बोला, "शायद मिल भी सकें। जिसका घर है, उससे बात करके देखता हूँ।"

सोनम्मा ने सुना और झपटकर वहाँ जा पहुँची।

"क्या है?" उसने कहा।

"यह घर किसका है?" पुरुष ने पूछा।

"हमारा।"

"हम देख सकते हैं?"

"नहीं।"

"क्यों? भीतर और भी मूर्तियाँ हैं?"

"नहीं।"

वह सख्ती से उन्हें टालने का प्रयत्न कर रही थी कि फकीरप्पा वहाँ आ पहुँचा।

"आओ, आओ, मैं दिखलाता हूँ।" बन्दर की तरह उछलकर उसने कहा और उन्हें अन्दर ले गया।

"मूर्ख! गधा! बदमाश!" मन-ही-मन उसे गालियाँ देती सोनम्मा वहीं खड़ी रही।

उसने सुना है, उसके घर के नीचे कभी मन्दिर था। अब तो कुछ टूटे-फूटे स्तम्भ बचे हैं। और बचे हैं उसके पोंगल-पोली। उन्हीं पर मिट्टी पत्थर ढोकर यह कच्चा-पक्का घर खड़ा किया गया है। कितने सुन्दर हैं पोंगल-पोली। बचपन में ही उसे इन यक्ष-यक्षिणी से प्यार हो गया था। वह चाहती थी, उन्हें कोई बहुत प्यारा-सा नाम दे, जिससे वे सिर्फ उसके होकर रहें। पता नहीं क्यों, एक दिन इस मरे फकीरप्पा से कह डाला था। फिर भी हैं वे उसी के। पोंगल, पोली नाम उसी ने उन्हें दिए थे। पूर्णिमा के दिन उसकी अम्मा खाने को पोली बनाती है और पर्व के दिन, पोंगल। उसकी अम्मा जैसा पोंगल कोई नहीं बना सकता। जाने कितने दिन पहले से आदमी सोचकर प्रसन्न होता रहे। और पोली? जैसे देवता का प्रसाद हो। कितनी कोमल। कितनी मीठी। याद करते ही मुँह में पानी भर आता है। तभी न अपने सबसे प्यारे यक्ष-यक्षिणी को उसने यही नाम दे डाले थे।

कितनी सुन्दर है यक्षिणी!

वक्ष भार से झुकी पड़ रही पतली कटि, नन्हे पक्षी समान होंठ, ऊँचे बँधे मणि जैसे केश और ये ढेर सारे ज़ेवर!

कितनी बार उसके बराबर में खड़े होकर उसने अपने को देखा है। क्या वह भी इतनी सुन्दर दिखती है?

पर उससे भी सुन्दर है यक्ष। क्या चौड़ी छाती है पर पोली जैसी पतली कटि। कितने प्रेम से पोली की कटि को बाँह से घेरकर वक्ष पर हाथ रखा हुआ है। वैसा ही प्रेम भरा है उसकी लम्बी बड़ी आँखों में। और उसके होंठ। जैसे अब बोले और अब बोले। हाथ से छूकर देखो तो साँस रुक जाए। एक बार तो...

याद करके वह लजा गई और ज़ोर-से बोली, "नहीं, मैं नहीं ले जाने दूँगी, कभी नहीं।"

वे लोग बाहर आ रहे थे। पुरुष खूब हँस रहा था। स्त्री गम्भीर थी।

"क्यों, सोचा नहीं था न," पुरुष ने हँसकर कहा, "भीतर दरजी की दुकान देखने को मिलेगी?"

"हूँ!" स्त्री ने गम्भीर स्वर में कहा, "इसके लिए कुछ करना होगा। इन मूर्तियों को इस हालत में यहाँ नहीं छोड़ा जा सकता।"

फिर वे दोनों देर तक मन्दिरों के बारे में बतियाते रहे, पर सोनम्मा ने ठीक से कुछ सुना-समझा नहीं। उसके कानों में वही वाक्य रह-रहकर बजता रहा।

"अभी कितनी बची है तुम्हारी थीसिस?" या ऐसा कुछ, आदमी ने पूछा था और उसने कहा था, "थोड़ा काम बाकी है, अभी पटडकल भी जाना है, वही तो चालुक्यों की राजधानी थी।" पुरुष ने उबासी ली तो वह बोली, "थक गए, पर सोचो तो सही, यह कितना पुराना है, कितना सुन्दर!

अरे, यह तो मन्दिरों का जन्मस्थान है।"

"और मेरा भी।" सोनम्मा ने अनायास सोचा।

तभी आदमी ने होंठ सिकोड़कर कहा, "और अब देखो, क्या हाल बना हुआ है। उफ् किस कदर गन्दगी है यहाँ!"

"गरीब लोग हैं। इन बेचारों को कला का क्या ज्ञान! मुझे तो सच, बड़ा दुख होता है इनके लिए।" स्त्री ने सहानुभूति से लरजते स्वर में कहा, पर सोनम्मा को लगा, उसने उसके गाल पर कसकर तमाचा मारा है।

"हाँ, वह तो है।" पुरुष ने लापरवाही से कहा, फिर पूछा, "चलें अब?"

"हाँ, चलो।" स्त्री ने कहा और चूड़ी भरा हाथ उठाकर धीरे-से अपने केश सँवार लिए।

सहसा सोनम्मा ने देखा, वह बिलकुल यक्षिणी के समान है। वही वक्ष भार से झुकी जा रही पतली कटि, वही नन्हें पक्षी समान होंठ, ऊँचे बँधे मणि जैसे केश, और ये ढेर सारे ज़ेवर। यक्ष के बराबर में खड़ी हो तो उसकी प्रिया लगे बिलकुल। उसे लगा, पोंगल-पोली को देने के लिए उसके बापू न भी माने तो कोई लाभ नहीं होगा। पोंगल स्वयं उठकर अपनी नई प्रिया के पीछे-पीछे चला जाएगा।

वह धम्म-से धरती पर बैठ गई, और बिछोह के दुख से आकुल, धाड़ मारकर रोने लगी।

मृदुला गर्ग: दिल्ली स्कूल ऑफ इकॉनॉमिक्स से एम.ए.। उपन्यासकार, कहानीकार, निबन्धकार व नाटककार। कई कहानियाँ अनेक भारतीय भाषाओं और अँग्रेज़ी, जर्मन, जापानी व चेक भाषाओं में अनूदित। *साहित्यकार सम्मान*, *साहित्य भूषण*, *सूरीनाम विश्व हिन्दी सम्मेलन सम्मान*, *व्यास सम्मान* आदि से सम्मानित। दिल्ली में रहती हैं।

सभी चित्र: शिवांगी सिंह: स्वतंत्र रूप से चित्रकारी करती हैं। कॉलेज ऑफ आर्ट, दिल्ली से चित्रकला, फाइन आर्ट्स में स्नातक। स्कूल ऑफ कल्चर एंड क्रिएटिव एक्सप्रेशन्स, अम्बेडकर यूनिवर्सिटी, दिल्ली से विज़्युअल आर्ट्स में स्नातकोत्तर की पढ़ाई की है। दिल्ली में निवास।

यह कहानी रेमाधव पब्लिकेशन्स प्रा. लि., नोएडा द्वारा प्रकाशित मृदुला गर्ग के कहानी-संग्रह *छत पर दस्तक* से ली गई है।